****

यह अनुवाद एदुआर्दो गालेआनो की किताब 'पातास आरीबा : ला एस्कुएला देल मुंदो अल रेबेस - उलटबांसियां : उल्टी दुनिया की पाठशाला' का एक हिस्सा है। इस पुस्तक का रंगभेद से संबंधित एक अंश हम पहले भी ला चुके हैं, मौजूदा अंश स्त्री के अधीनीकरण और उत्पीड़न से संबंधित है। यह पुस्तक 'ग्लोबलाईज्ड' समय के क्रूर अंतर्विरोधों और विडंबनाओं को दिखाता हुआ एक आईना है, जिसमें भारत सहित तथाकथित 'तीसरी' दुनिया के देशों का अक्स मौजूद है। इस पुस्तक का अनुवाद कर रहे हैं जे.एन.यू. के स्पैनिश भाषा-साहित्य के शोधार्थी पी.कुमार मंगलम।

****

पुरुष वर्चस्व का पहला सबक

- एदुआर्दो गालेआनो

नजरिया 1

जरा सोचिए अगर ईसाई उपदेश धर्मप्रचारिकाओं की कलम से निकले होते तो क्या होता ! ईसा युग की पहली रात का बखान कैसे होता? उनकी कलम यही बताती कि संत खोसे उस रात कुछ उखड़े-उखड़े से थे। भीड़भाड़ और होहल्ले से भरी उस जगह में घास-फूस और पंखों के पालने में झुलते नवजात ईसा के करीब होकर भी वह अनमने ही बने रहे। वर्जिन मेरी, फरीश्तों, चरवाहों, भेड़ों, बैलों, खच्चरों, पूरब से आए जादूगरों और बेलेन तक का रास्ता दिखाते सितारे के मदमस्त झुंड में वह अकेले ही, उदास खड़े थे। कुरेदे जाने पर कुछ अस्पष्ट-सी आवाज में उन्होंने कहा:

''मुझे तो एक बच्ची की चाहत थी'' !

नजरिया 2

क्या होता अगर हव्वा ने जेनेसिस लिखी होती ![1] इंसानी सफर की पहली रात तब कैसी होती ! उसने किताब की शुरुआत ही यह बताते हुए की होती कि वह न तो किसी जानवर की हड्डी से पैदा हुई थी, न ही वह किसी सांप को जानती थी, उसने किसी को सेब भी नहीं दिए थे। ईश्वर ने उससे यह नहीं कहा था कि बच्चा जनते समय उसे दर्द होगा और उसका पति उसपर हुकूमत करेगा। वह बताती कि यह सब तो सिर्फ झूठ और झूठ है जिसे आदम ने प्रेस वालों को बताकर 'इतिहास' और 'सच' का रूप दे दिया था।

''अरे छोड़ो भाई, ये सब औरतों की बातें हैं।'' अक्सर हम यह कह-सुन लेते हैं। दुनिया में रंगभेद और मर्दों की हुकूमत का सिलसिला साथ ही शुरू हुआ और चलता रहा है। अपनी धमक बनाए रखने के उनके दावे-हवाले भी एक जैसे ही होते हैं। इस दोहरे लेकिन घुले-मिले खेल को उघाड़ते एउखेनिओ राउल साफ्फारोनि स्पेन में 1546 [2] में बने कानून 'एल मार्तिल्यो दे लास ब्रुखास' का हवाला देते हैं। 'डायन' करार दी गई औरतों को 'ठीक' करने वाला यह फरमान बाद में आधी आबादी के खिलाफ कई कानूनों का आधार बना। वह यह भी बताते हैं कि धर्म-ईमान के 'पहरेदारों' ने कैसे यह पूरा पोथा ही औरतों पर जुल्म को जायज ठहराने और मर्दों के मुकाबले उनकी 'कमजोरी' बार-बार साबित करने के लिए लिख डाला था !

वैसे भी, बाइबिल और यूनानी किस्सों-कहावतों के जमाने से ही औरतों को कमतर बताने-बनाए जाने की शुरुआत हो चुकी थी। तभी यह याद दिलाया जाता रहा है कि वो हव्वा ही थी जिसकी बेवकूफी ने इंसान को स्वर्ग से धरती पर ला पटका। और, दुनिया को मुसीबतों से भर देने वाले पिटारे का ठीकरा भी एक औरत पांडोरा पर ही फोड़ा जाता है। अपने चेलों को संत पाब्लो यही सबक रटाया करते थे कि ''औरत के शरीर का एक ही हिस्सा मर्दों वाला होता है, और वह है उसका दिमाग''! वहीं, उनसे उन्नीस सौ साल बाद सामाजिक मनोविज्ञान के आरंभकर्ताओं में रहे गुस्ताव ले गोन भी इसी धूर्त खेल को बढ़ाते रहे। और तो और, वह यह भी फरमा गए कि ''किसी औरत का अक्लमंद होना उतना ही अजूबा है, जितना दो सिरों वाले चिम्पांजी का पाया जाना''! घटनाओं का अंदाजा लगा सकने की औरतों की खूबियां गिनाने वाले चार्ल्स डार्विन भी इसे 'नीची' नस्ल की खासियत ही बताते रहे।

अमरीकी महादेशों पर यूरोपीय हमलों के समय से ही वहां समलैंगिकों को मर्दानगी के ''कुदरती ढांचों'' के खिलाफ ठहरा दिया गया था। अपने नाम से ही पुरूष जान पड़ते ईसाई भगवान के लिए मूलवासियों में मर्दों का औरतों की तरह होना सबसे बड़ा पाप था। ऐसे ईश्वर के 'सभ्य' सेवकों के लिए मूलवासी मर्द ''बिना स्तन और प्रजनन क्षमता वाली स्त्री'' ही रहे। इसी वजह से कि वे व्यवस्था के लिए जरूरी मजदूर नहीं पैदा करतीं, आजकल भी समलैंगिक औरतें 'स्त्री' होने के 'कायदों' के उलट बता दी जाती हैं।

गढ़ी और बार-बार दुहराई गई धारणाओं में औरत बच्चे पैदा करने, नशेड़ियों को आनंद देने और 'महात्माओं' के पापों को अपनी चुप्पी से ढंकने वाली ही रही है। यही नहीं, वह मूलवासियों और काले लोगों की तरह ही स्वभाव से पिछड़ी भी बताई जाती रही है। आश्चर्य नहीं कि इन्हीं तबकों की तरह वह भी इतिहास के हाशिये पर फेंक दी गई है! अमरीकी महादेशों के सरकारी इतिहास में आजादी के 'महान' जंगबाजों की मांओं और विधवा औरतों की बहुत धुंधली मौजूदगी यही साबित करती है। यों, यह इतिहास मर्दों को अगुवाई सौंपते नये मुल्कों के झंडों तथा औरतों की हद तय करते कढ़ाई और मातम जैसे घरेलू कामों का तोतारटंत ही ज्यादा रहा है।

[2] **यह मध्ययुग में कायम रही तथाकथित धर्म अदालतों 'इन्किसिसीयोन' के दौर की बात है। ये कचहरियां नए इसाई बने मुस्लिमों और यहूदियों की पवित्रता जांचने के साथ-साथ अधर्मियों की पहचान कर उन्हें सजा भी देती थीं।**

यही इतिहास यूरोपीय हमलों में आगे-आगे रही औरतों और फिर आजादी की लड़ाईयों की क्रियोल[3] महिला योद्धाओं को विरले ही याद करता है। युद्ध और मार-काट का बखान करने वाले इतिहासकार इन औरतों की 'मर्दाना' बहादुरी का जिक्र तो कर ही सकते थे[4] ! इतना ही नहीं, गुलामी के खिलाफ खड़ी हुई अनगिनत मूलवासी और काली नायिकाओं का तो यहां कोई जिक्र ही नहीं है। इतिहास से गायब कर दी गईं इनकी आवाजें कभी-कभार और अचानक ही किसी जादू की तरह सामने आती और बहुत कुछ कह जाती हैं। मसलन, हाल ही में सूरीनाम पर लिखी एक किताब पढ़ते हुए, मैंने मुक्त हुए गुलामों की नेता काला को जाना। पूजे जाने वाले अपने डंडे से वह दूर-दूर से भाग कर आते गुलामों की अगुवाई किया करती थी। उसकी एक और खास बात यह लगी कि उसने अपने निहायत ही नीरस पति को छोड़ा और पीट-पीट कर मार डाला था।

अश्वेतों और मूलवासियों की तरह ही औरत का 'पिछड़ापन' भी हर तरह से साबित कर दिया गया है। हांलाकि, वह एक संभावित ''खतरा'' भी रही है। ''भाई, एक औरत की तमाम अच्छाइयों से एक मर्द की बुराई कहीं अच्छी'', यह सीख ईसाई गुरू एक्लेसियास्तेस की थी ! वहीं, सुनी-सुनाई कहानियां यही गाती आई हैं कि यूनानी लड़ाका उलिसेस कैसे मर्दों को भरमाने वाली सुरीली आवाजों को बखूबी भांप लेता था। वहां सभी मानते थे कि ये आवाजें जलपरी का रूप धर मर्दों को गायब करने वाली औरतों की ही होती हैं। हथियारों और शब्दों पर मर्दों का कब्जा जायज ठहराती ऐसी ही रीतियों की दुनिया में कोई कमी नहीं है। फिर, उन्हें नीचा दिखाए जाने या एक खतरा बताए जाने की हामी भरने वाली मान्यताएं भी अनगिनत हैं।

पीढ़ीयों से चले आ रहे मुहावरे सबक देते हैं: ''औरत और झूठ इस दुनिया में एक ही दिन आए थे''। यह और जोड़ा जाता है कि ''औरत के बात की कीमत एक रत्ती भी नहीं होती''। ऐसे ही विश्वासों के साथ पले-बढ़े लातीनी अमरीकी किसान मानते आए हैं कि रात में राहगीरों पर घात लगाए, बदले की प्यासी बुरी आत्माएं औरतों की ही होती हैं। बातों से होकर चौकन्नी आंखों और सपनों तक पसरे इन भ्रमजालों का आखिर मतलब क्या है! यह सब कुछ आनंद और सत्ता के मौकों पर औरतों के संभावित दावे से उपजती मर्दाना बेचैनी ही जाहिर करता है।

बात की बात में 'डायन' बतलाकर सरेआम मार दिया जाना औरतों की नियति रही है। और, यह स्पेनी 'धर्म अदालतों' तक ही सीमित नहीं रहा है। अपनी यौनिकता, और सबसे बढ़कर, इसका अपनी मर्जी से इस्तेमाल कर सकने की संभावनाएं औरतों को बौखलाई निगाहों, धमकियों और कड़वे बोल का 'तोहफा' देती आई हैं। तमाम

[3] लातिनी अमरीका में गुलामी के दौर में स्पेनी, पुर्तगाली, मूलवासी और अफ्रीकी समुदायों के मेल से कई जाति और उपजातियां बनी थीं। 'शुद्ध' यूरोपीय खून के अपने दावे के साथ क्रियोल खुद को इस बहुरंगी सामाजिक सीढ़ी के सबसे ऊपर रखते थे।

[4] ठीक उसी तरह जैसे झांसी की रानी की वीरता समझने-समझाने के लिए उनकी बहादुरी को मर्दाना होने का तमगा दिया जाता रहा है। सुभद्रा कुमारी चौहान की कविता बताती है: 'खूब लड़ी मर्दानी वह तो झांसी वाली रानी थी'

पहरों-पाबंदियों से छिटकती ऐसी ‘विस्फोटक’[5] संभावनाओं को कुचलने के उपाय भी सदियों पुराने हैं। इनका हव्वा खड़ा कर औरतों को शैतान का रूप बताया जाना, इसी सिलसिले की शुरूआत है। फिर, मानो यह दिखाते हुए कि आग की सजा आग ही होती है, इन ‘गंदी’ औरतों को भगवान की ‘मर्जी’ से जिंदा भी जलाया जाता रहा है।

इस तरह की तमाम करतूतों में जाहिर होती बौखलाहट को यही डर हवा देता आया है कि औरत भी जिंदगी खुल कर और मजे से जी सकती है। सालों-साल से अलग-अलग जगहों की कई संस्कृतियों में दुहराई गई एक खास मान्यता के मायने कुछ यही हैं। योनि को मुंह फाड़े किसी भयंकर मछली की तरह पेश करता इसका ‘सच’ यह सिखाता हैः ‘औरत तो नरक का द्वार होती है’[6]। और आज भी जब एक सदी खत्म होकर नई शुरु हो चुकी है, करोड़ों औरतों के यौनांगों पर हमला बदस्तूर जारी है।

ऐसी कोई भी औरत नहीं मिलेगी जिसपर बुरी ‘‘चाल-चलन’’ का ठप्पा न लगा हो। लातीनी अमरीका के लोकप्रिय नृत्यों बोलेरो और तांगो में सभी औरतें धोखेबाज और वेश्या (मां को छोड़कर) ही रही हैं। वहीं, दुनिया के दक्षिणी देशों में हर तीसरी शादीशुदा औरत रोजाना घरेलू हिंसा झेलती है। ‘‘सात जन्मों के बंधन’’ का यह तोहफा उसे उन सब कामों की सजा देता है जो वह करती है या फिर कर सकती है।

मोंतेवीदियो[7] की बस्ती कासाबाये की एक मजदूरिन बताती है :

‘‘सोये में ही किसी बड़े घर का लड़का आकर हमें चूमता और हमारे साथ सोता है। जगने पर वही हमें मारता-दुत्कारता है’’।

वहीं, दूसरी कहती हैः

‘‘मुझे अपनी मां से डर लगता है, मेरी मां भी मेरी नानी से डरा करती थी’’।

समाज और परिवार में ‘संपत्ति के अधिकार’ को मनवा लिए जाने की ऐसी मिसालें और भी हैं। जैसे, मार-पीटकर औरत पर अपनी हुकूमत चलाते मर्द और बच्चों पर अपनी जबर्दस्ती थोपते औरत मर्द दोनों। और क्या बलात्कार इसी हुकूमत को मनवा लेने की सबसे हिंसक और खौफनाक नुमाईश नहीं है?

एक बलात्कारी को सिर्फ आनन्द नहीं चाहिए। वह तो उसे मिलता भी नहीं। उसे चाहिए औरत के शरीर पर अपना पूरा और मनमाना कब्जा। हर बार और बर्बर होता बलात्कार अपने शिकारों की देह पर संपत्ति के ऐसे ही दावों के कभी न भरने वाले घाव छोड़ जाता है। और, यह हमेशा से तीर, तलवार, बंदूक, मिसाइल और दूसरे साजो-सामान

[5] अभी ज्यादा दिन नहीं हुए, हिंदू लड़कियों व मुस्लिम लड़कों की शादियों को देश की एकता-अखंडता के लिए गंभीर खतरा मानने वाले बाबू बजरंगी ने यह बयान दिया था ‘हिंदू घरों में बैठी हर कुंवारी लड़की एक बम है जो अपनी मर्जी से चल जाए तो हिंदू समाज के लिये बड़ा खतरा है’।

[6] हाल में बिहार में लोगों की जुबान पर चढ़े एक गाने के बोल थे ‘मिस काल करताड़ु किस देबु का हो, अपना मशीनिया में पीस देबु का हो’।

[7] लातिनी अमरीकी देश उरुग्वे की राजधानी।

के साथ चले सत्ता के मर्दाना खेल का सबसे भयानक चेहरा है। संयुक्त राज्य अमेरिका में हर छः मिनट और मेक्सिको में हर नौ मिनट में एक औरत सत्ता का यह 'अधिकार' झेलती है। मेक्सिको की एक महिला कहती हैं:

''बलात्कार का शिकार होना और किसी गाड़ी के नीचे आ जाना एक बराबर ही है, सिवाय इसके कि बलात्कार के बाद मर्द यह पूछते हैं कि जो हुआ उन्हें पसंद आया कि नहीं''।

आंकड़ों से बलात्कार के सिर्फ उन मामलों का पता चलता है, जिनकी रपट लिखाई जाती है। लातीनी अमरीका में ऐसे मामले सच्चाई के आंकड़ों से हमेशा बहुत कम होते हैं। बलात्कार झेलने वाली ज्यादातर औरतें तो डर की वजह से चुप रह जाती हैं। अपने ही घर में बलात्कार का शिकार हुई बच्चियां 'अवैध' संतानों को किसी सड़क पर जन्म देती हैं। यहीं पलने वाले लड़कों की तरह, इन सस्ती देहों का आसरा भी यह सड़कें ही रह जाती हैं। रियो दी जानेइरो[8] की गलियों में 'भगवान भरोसे' पली-बढ़ी चौदह साल की लेलिया बताती है"

''हाल यह है कि चारों ओर लूट है। मैं किसी को लूटती हूं, और कोई मुझे"।

देह बेचने के एवज में लेलिया को या तो बहुत कम मिलता है या फिर मिलती है सिर्फ मार और दुत्कार। और जब कभी गुजारे की गरज से वह चोरी करती है, तब पुलिस उससे वह भी झपट लेने के अलावा उसकी इज्जत भी लूटती है। मेक्सिको सिटी[9] की गलियों में भटकते हुए बड़ी हुई सोलह साल की आंखेलिका बताती है:

''यह बताने पर कि मेरा भाई मेरा शारीरिक शोषण कर रहा है, मां ने मुझे ही घर से बाहर कर दिया। अब मैं एक लड़के के साथ रह रही हूं और पेट से हूं। वह कहता है कि अगर लड़का हुआ तो मेरी मदद करेगा। लड़की होने की सूरत में उसने कुछ भी वायदा नहीं किया"।

यूनिसेफ[10] की निदेशिका का मानना है: ''आज की दुनिया में लड़की होना खतरों से खाली नहीं है"। यहां वह नारीवादी आंदोलनों की तमाम सफल मांगों के बावजूद बचपन से ही औरतों के खिलाफ चले मारपीट और भेदभाव को भी सामने लाती हैं। 1995 में बीजिंग में स्त्री-अधिकारों पर हुई अंतर्राष्ट्रीय बैठक में यह बात खुली कि एक ही काम के एवज में उन्हें मर्दों के मुकाबले तिहाई मजदूरी ही मिलती है। किन्हीं दस गरीबों में सात तो औरतें ही होती हैं, वहीं सौ में से बमुश्किल एक के पास कोई संपत्ति होती है। यह सब 'तरक्की' और 'खुशहाली' के रास्ते पर इंसानियत की अधूरी उड़ान ही जाहिर करता है। वहीं, संसदों की बात करें तो औसतन दस सांसदों में एक और कहीं-कहीं तो एक भी महिला सांसद नहीं है।

---

[8] ब्राजील का सबसे बड़ा शहर

[9] लातिनी अमरीकी देश मेक्सिको की राजधानी

[10] (UNICEF) युनाइटेड नेशंस इन्टरनेशनल चिल्ड्रेंस इमरजेंसी फंड संयुक्त राष्ट्र की एक महत्वपूर्ण संस्था है जो बच्चों के हित में काम करती है।

जब औरतों की जगह घर, कारखानों तथा दफ्तरों में थोड़ी-बहुत और रसोई घर तथा बिस्तर में पूरी तरह पक्की कर दी गई है, मर्द हमेशा की तरह सत्ता और युद्ध के मालिक बने हुए हैं। ऐसे में यूनिसेफ की निदेशिका कारोल बेल्लामी जैसी मिसालें इक्का-दुक्का ही हैं। संयुक्त राष्ट्र समानता के अधिकारों की बात करता है, उसे खुद के ऊपर लागू नहीं करता। दुनिया की सबसे बड़ी पंचायत में हर दस अहम पदों में आठ पर मर्द काबिज हैं।

Translated by **P. Kumar Mangalam**
Email - **pkmangalam@gmail.com**